ॐ श्रीगणेशाय नमः

॥ अथ श्रीगीतागुह्यम् ॥

प्रज्ञावादान् निराकृत्य गीतागुह्यं प्रगृह्यताम् ।
नैव नाशो निवासो वा कस्यचिदिति निश्चितम् ॥१॥

अनुवाद – विद्वत्ता की बातें छोड़ कर गीता के सार को अच्छी तरह ग्रहण करो। यह निश्चित है कि किसी का नाश नहीं होता अर्थात् आत्मा का नाश नहीं होता तथा शरीर का निवास अर्थात् उसका हमेशा बना रहना सम्भव नहीं है । अभिप्राय यह है कि बुद्धि विलास छोड़ कर गीता के सार को समझ कर इस नाशवान् शरीर तथा मन को आत्मतत्त्व के अनुसन्धान में लगा देना चाहिए ॥१॥

म्रियमाणं हि को रक्षेत् कोऽवध्यं हन्तुमर्हति ।
असदसद्धि सत्सच्च जन्ममृत्युर्न तत्त्वतः ॥२॥

अनुवाद – मरते हुए की अर्थात् नाशवान् शरीर की कौन रक्षा कर सकता है? अवध्य अर्थात् अनश्वर आत्मा को कौन मार सकता है? अभिप्राय यह है कि शरीर को कोई बचा नहीं सकता और न ही कोई नित्य आत्मा का नाश कर सकता है । असत् असत् ही रहता है और सत् सत् ही । आत्मा सत् है, वह असत् नहीं हो सकता अर्थात् उसका अभाव नहीं हो सकता और जगत् कभी सत् नहीं हो सकता अर्थात् तीनों कालों में उसकी सत्ता नहीं होती । जन्म तथा मृत्यु वास्तव में नहीं होतीं क्योंकि सनातन तत्त्व तो एक ही है ॥२॥

कर्तव्यश्चेद्धि कर्तव्यः संग्रामः स्वजनैरपि ।
निष्पक्षो निर्ममो भूत्वा न्यायाधीशासनस्थवत् ॥३॥

अनुवाद – कर्तव्य तो करना ही चाहिए । यदि अपने सम्बन्धियों से संग्राम करना कर्तव्य पक्ष में आता है तो अपने लोगों से भी संग्राम करने में हिचकना नहीं चाहिए । निष्पक्ष तथा ममतारहित होकर न्यायाधीश की तरह व्यवहार करना चाहिए ॥३॥

कौशलेन क्रिया कार्या यज्ञभावान्मुमुक्षुणा ।
मायाचक्रं विवर्तेत मायाऽक्रियं वियोजयेत् ॥४॥

अनुवाद – मोक्ष के इच्छुक व्यक्ति को यज्ञ की भावना से युक्त होकर कुशलतापूर्वक अर्थात् समत्वबुद्धि से युक्त होकर कर्म करना चाहिए । मायाचक्र घूमता रहता है अर्थात् अकर्म में आसक्त मनुष्य को माया कर्म में लगा देती है । नैष्कर्म्य में प्रतिष्ठित व्यक्ति को माया अपने से पृथक् कर देती है अर्थात् मुक्त कर देती है ॥४॥

योगो ज्ञानेन स्याद्युक्तो ज्ञानं योगेन संविशेत् ।
भूर्भुवोवच्च सर्वत्र प्रश्नात् तयोर्व्यवस्थितिः ॥५॥

अनुवाद – कर्मयोग ज्ञान से युक्त होना चाहिए अर्थात् व्यक्ति को समझ तथा विवेक के साथ कर्म सम्पन्न करने चाहिए । विवेक से शास्त्रोक्त कर्म करने पर मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध होता है और वह ज्ञान का अधिकारी बन जाता है । इस प्रकार वह योग से ज्ञान में प्रवेश करता है । योग तथा ज्ञान की स्थिति सर्वत्र पृथिवी तथा अन्तरिक्ष की तरह होती है अर्थात् जिस प्रकार अन्तरिक्ष पृथिवी पर टिका होता है, उसी प्रकार ज्ञान भी सामान्यतया विवेक से किए गए शास्त्रोक्त कर्मों पर आश्रित होता है । यह प्रश्न से व्यवस्थित होता है कि कोई व्यक्ति कर्म द्वारा परम्परा से मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी है अथवा सीधा ज्ञान से । आप्तपुरुष से इस विषय में जब मुमुक्षु प्रश्न करता है तब वे इस की व्यवस्था करते हैं कि वह कर्ममार्ग के द्वारा अपने लक्ष्य को सिद्ध करे अथवा सीधे ज्ञान मार्ग से चल कर ॥५॥

संस्मरन् सर्वसारं तं तदर्थं कर्म कल्पयन् ।
तदादर्शस्त्वमेवासि तस्य भावः स एव हि ॥६॥

अनुवाद – सकल पदार्थों के सारभूत परमेश्वर का स्मरण करते हुए उसके लिए कर्म करने चाहिए । तुम उसके सदृश ही हो अर्थात् तुम ही परमात्मा के प्रतिबिम्ब हो । (माया की दृष्टि से) तुम उससे उद्भूत हुए हो । तुम वही हो ॥६॥

पतितपावनः श्रीशः प्रीतः पत्रेऽपि पितृवत् ।
धर्म्यामृतेन संसेव्यः सगुणो निर्गुणोऽपि सः ॥७॥

अनुवाद – लक्ष्मीपति पतितपावन हैं । पिता के सदृश वे पत्ते से भी सन्तुष्ट हो जाते हैं । गीता के बारहवें अध्याय में निर्दिष्ट साधनों से तथा प्रणव के द्वारा उनकी उपासना करनी चाहिए । वे निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं ।।७।।

शरीरं क्षेत्रमित्याहुर्ज्ञानं सत्त्वव्यवस्थितिः[१] ।
मूलं ज्ञेयं परं ब्रह्म जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात् ।।८।।

अनुवाद – शरीर को क्षेत्र कहते हैं। अर्थात् जैसे पशु पक्षी से खेत की रक्षा करते हैं वैसे ही शरीर की षड् रिपुओं से रक्षा करनी होती है । सत्त्व गुण में सम्यक् रूप से स्थित रहना 'ज्ञान' है। (श्रीमद्भगवद्गीता के १३ वें अध्याय के ७ वें से लेकर ११ वें श्लोक के पूर्वार्ध तक ज्ञान के साधनों का प्रतिपादन किया गया है। इन्हीं साधनों को ११ वें श्लोक के उत्तरार्ध में औपचारिक रूप से ज्ञान शब्द से कहा गया है तथा उससे अन्य को अज्ञान।) संसार का मूल परब्रह्म जानने योग्य है (वेदान्त के प्रमेय अर्थात् ज्ञेय को भगवान् १२ वें ही श्लोक में बतलाते हैं)। जगत् में अनुगत होने के कारण चैतन्य अर्थात् ब्रह्म ही सबका मूल कारण है जिससे जगत् की उत्पत्ति होती है और जिसमें उसकी स्थिति और लय होते हैं। (इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान तथा ज्ञेय इन तीनों को भगवद्गीता के १३ वें अध्याय के सार रूप में बाबाजी ने इस श्लोक में कह दिया है। इस प्रसंग में गीता के १३ वें अध्याय का १८ वाँ श्लोक भी अवधेय है।)।।८।।

१. सत्, ज्ञान तथा ब्रह्म पर्याय हैं । सत्त्व अर्थात् सत्ता में व्यवस्थिति (सत्ता के साथ तादात्म्य होना) ही ज्ञान (क्षेत्रज्ञ) है। ऐसा अर्थ भी संभव है ।

गुणार्हमम्बरं येन व्यावृतं वै तदमृतम् ।
यद् बुद्ध्वा विरसं सर्वं येन स्यान्मधुरं मधु ।।९।।

अनुवाद – (तीन सत्त्व, रजस् तथा तमस्) गुणों से निर्मित वस्त्ररूपी माया से वह अमृतस्वरूप ब्रह्म विशेषरूप से ढ़का हुआ है । जिसका ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर अन्य सब कुछ नीरस हो जाता है । जिससे मधु भी मधुर हो जाता है ।।९।।

तपस्त्यागादिभिर्लिङ्गैर्मुक्तिमार्गः प्रतीयते ।
दम्भदर्पादिभिर्लिङ्गैर्बन्धमार्गो न गम्यते ।।१०।।

अनुवाद - तपस्या आदि चिह्नों से मुक्तिमार्ग अनुभव में आने लगता है । तप आदि करने वाला व्यक्ति मुक्ति मार्ग का पथिक है । दम्भ दर्प आदि चिह्नों से बन्धमार्ग (संसार) चलने योग्य नहीं है अर्थात् इस अनर्थपूर्ण संसार को पार नहीं किया जा सकता ।।१०।।

इत्थं हि साधु वर्तेथा यथा त्वां तु स्मरेद्धरिः ।
परित्यज्य प्रवृत्तिं वा सर्वदैकं हरिं स्मर ॥११॥

अनुवाद - इस प्रकार सद्व्यवहार करो कि परमेश्वर तुम को याद करे अर्थात् परमेश्वर को आप अच्छे लगो या प्रवृत्ति को छोड़ कर सदा ही हरि का स्मरण करो ।।११।।

हरिः ॐ तत्सत् ।
श्रीमद्भगवद्गीतापारिजातपुष्पवाटिकायाः सारमुद्धृत्य कृतं
श्रीकृष्णार्पणमिदं मधु ॥

श्रीमद्भगवद्गीता रूपी पारिजात के पुष्पों की वाटिका से सार निकाल कर श्रीकृष्ण को यह मधु समर्पित किया।